संघवाद; चाह, चरित्र और चेहरा

डॉ. बासुकी नाथ चौधरी,

एसोसिएट प्रोफेसर,
पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य),
दिल्ली विश्वविद्यालय

सार

अमेरिका और कनाडा संघवाद का बेहतर उदाहरण माना जाता है, लेकिन भारतीय संघ के निर्माणकर्त्ताओं ने भारत की विविधता और विशालता को व्यवस्थित करने के लिए उसे अलग–अलग ईकाइयों में बाँटा। यह प्रक्रिया कोई अन्तिम प्रक्रिया नहीं थी, इसमें निरन्तरता है और इस मामले में केन्द्र सर्वशक्तिमान है। अमेरिका दूसरी ओर स्वतंत्र राज्यों के संघीभूत होने से बना है। 1935 का भारत सरकार अधिनियम में हमें जो संविधान मिला, वह भी वस्तुतः संघवाद पर आधारित था लेकिन स्वतंत्रता संग्राम में रत नेताओं को उसे पूर्णरूप से अंगीकार करने में दिलचस्पी नहीं थी। अतः संघ के आधार पर तो नहीं लेकिन प्रान्त के स्तर पर चुनाव भी हुआ, सरकारों का गठन हुआ और 1937 से 1939 तक चली भी। अगर द्वितीय विश्व युद्ध में अंग्रेजों ने इन सरकारों की राय से भारत को युद्ध में शामिल किया होता तो शायद ये सरकारें और लम्बे समय तक चलतीं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक ओर संविधान सभा का गठन हो रहा था और दूसरी ओर विभाजन की विभीषिका, कुछ देशी रियासतों (खासकर हैदराबाद और जूनागढ़) द्वारा विलय में समस्या पैदा करना और जम्मू और कश्मीर के नरेश महाराजा हरि सिंह द्वारा स्वतंत्र रहने का फैसला, पाकिस्तानी आक्रमण के बाद हरि सिंह द्वारा भारत से सैनिक कार्रवाई की माँग, अधिमिलन विलेख (letter of Annexation) पर उत्पन्न देरी, साम्प्रदायिकता का जहर और पुराना अनुभव कि जब–जब केन्द्र कमजोर हुआ है, विघटनकारी ताकतों ने इसकी एकता पर प्रहार किया है आदि ज्वलन्त समस्या सामने थी। शयद इन्हीं कारणों ने संविधान निर्माताओं को ''सशक्त केन्द्र'' बनाने हेतु प्रेरित किया। अतः संविधान का पहला अनुच्छेद ही ''फेडरेशन'' की जगह ''यूनियन'' शब्द इस्तेमाल करता है। साफ है जोर केन्द्र को मजबूत बनाने पर था।

चलिए, संविधान बना और आज लगभग 71–72 वर्ष हो गये हैं। इस पेपर का मूल उद्देश्य इस बात की समीक्षा करना है कि संविधान निर्माताओं ने जो चाहा और जैसा चरित्र इस संविधान को दिया, क्या आज हमारे समाज का, क्षेत्र का, राज्य का और केन्द्र का चेहरा उसी के अनुरूप है या नहीं? यदि है तो किन–किन कारणों ने संघवाद को सुडौलता प्रदान किया और यदि नहीं तो, इसके कारण क्या थे और यदि सुधार की आवश्यकता है तो क्या करें?

भारत में एकल नागरिकता, अखिल भारतीय सेवाएँ, एकीकृत न्यायिक व्यवस्था, केन्द्र और राज्यों के लिए एक ही संविधान की स्वीकार्यता, राज्यपालों की राष्ट्रपति की कृपा तक नियुक्ति की स्थिरता, संकटकालीन प्रावधान, और वैधानिक, प्रशासनिक एवं वित्तीय संबंधों में केन्द्र की राज्यों के ऊपर वरीयता केन्द्र के शक्तिशाली

होने की ओर इंगित करता है। अमेरिका की संघीय व्यवस्था नये राज्य को संघ में शामिल करने का अधिकार तो रखती है लेकिन वर्तमान राज्यों को विखंडित कर नये राज्य के निर्माण का अधिकार नहीं रखती, जबकि भारतीय संघ वर्तमान राज्यों को विखंडित कर नये राज्यों के निर्माण का अन्तिम अधिकार रखती है। लेकिन ऐसा नहीं है कि राज्यों को भगवान भरोसे छोड़ दिया गया। शक्ति का विभाजन हुआ। अनुच्छेद 246, 7वें सिडूल के तहत केन्द्र, और राज्यों के बीच शक्ति का बंटवारा किया गया। अखिल भारतीय महत्व के 99 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र को दिया गया। 61 विषयों पर राज्यों को यह अधिकार दिया गया। ऐसे 52 विषय भी हैं जिनमें केन्द्र और राज्य सरकार दोनों कानून बना सकते हैं और इसे समवर्ती सूची कहते हैं। सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक समीक्षा का अधिकार भी है।

केशवानंद भारती केस, 1973 ने प्रतिवादित किया कि संघवाद भारतीय संविधान का मूल है। एस.आर. बोम्बई बनाम भारत संघ, 1994 में 9 न्यायाधीशों की पीठ ने फैसला दिया कि भारतीय संविधान का चरित्र संघवादी है। कुछ न्यायाधीशों ने इसे (संघवाद) भारतीय संविधान की मूल विशेषता बतायी। मिनर्वा मिल्स केस में सुप्रीम कोर्ट, 1980 ने निर्णय दिया संघ (केन्द्र) द्वारा बनाया गया कोई भी कानून जो संविधान की मूल विशेषताओं के विपरीत हो या उसका उल्लंघन करता हो, अमान्य होगा।

ग्रेनविल ऑस्टिन ने भारतीय संघ को सहयोगी संघवाद की संज्ञा दी[1], जबकि ए.एच. बिर्च इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह सही है कि वित्तीय सहायता और करों के वितरण के लिए राज्य केन्द्र पर निर्भर करता है लेकिन वितरण और सहायता के निश्चित प्रक्रिया का वर्णन भी है संविधान में[2] राज्यों को स्वयं भी आय का साधन है और उसे कर बढ़ाने और नया कर लगाने का अधिकार भी है।

उपर्युक्त वर्णन में दो बातों की जानकारी मिलती है। पहला, किस प्रकार के संविधान की चाह थी और संविधान को कैसा चरित्र दिया गया। आइये अब चेहरे का विश्लेषण करें, जो पिछले 70–72 साल में उभरकर आया है। आजादी से लेकर 1967 तक केन्द्र और राज्य के सम्बन्ध में कहीं तनाव नहीं दिखता है। 1957 के बाद अल्प समय के लिए केरल में कम्युनिस्टों की सरकार बनी लेकिन उसे भंग कर दिया गया और अनुच्छेद 356 का शायद पहली बार दुरुपयोग हुआ था। इसको छोड़कर केन्द्र–राज्य के बीच मधुरता ही देखने को मिली। इसका एक कारण दोनों जगहों पर एक ही पार्टी की सरकार और नेहरूजी का प्रभावशाली व्यक्तित्व था। यह भी सही है कि उस समय के जितने भी मुख्यमंत्री थे, सबके सब अपने आप में स्वतंत्रता संग्राम के महत्वपूर्ण प्रभावशाली नेता भी थे लेकिन नेहरू से उनके व्यक्तिगत रिश्ते भी बहुत अच्छे थे। प्रो. एल.एन. शर्मा ने लिखा है कि नेहरू मुख्यमंत्रियों को राष्ट्र एवं राज्य की नीतियों पर नियमित रूप से पत्र लिखते थे।[3] इसका एक फायदा यह भी था कि केन्द्र और राज्य तथा सरकारों के बीच संवादहीनता की स्थिति कभी नहीं आई। वित्त आयोग और क्षेत्रीय परिषदें, योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद के कार्यप्रणाली की भी समीक्षा की जाय तो ऐसा लगता है कि स्वतंत्रता से लेकर 1967 तक कमोबेश भारतीय संविधान ने एकात्मक स्वरूप (चेहरा) का परिचय दिया।

1964 में पंडित नेहरू की मृत्यु हो गयी। राज्यों के भी अधिकांश नेता वो नहीं रहे जो स्वतंत्रता संग्राम से तप कर आये थे। कांग्रेस कमजोर पड़ी, लोहिया का समाजवादी पार्टी द्वारा चलाया जा रहा आन्दोलन जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा था, इंदिरा जी भी कांग्रेस में विभाजन के कारण कमजोर हो गयी थीं।

कम्युनिस्टों के समर्थन पर सरकार टिकी थी, इसलिए आर्थिक नीतियों में बदलाव साफ–साफ दिख रहा था। कुल मिलाकर केन्द्र के कमजोर होने के लिए सभी कारक मौजूद थे। 1967 में प्रांतीय चुनाव हुआ और उत्तर भारत के 9 राज्यों में कांग्रेस हार गयी। किसी भी पार्टी को बहुमत नहीं मिला और कई पार्टी की खिचड़ी संविद सरकार बनी। इसके साथ ही राज्यों की स्वायत्तता की मांग जोरों से राजनीतिक क्षितिज पर सामने आ गया।

यद्यपि इंदिरा जी ने प्रारम्भ में इन बातों पर कम ध्यान दिया और 1971 में एक बार पुनः अधिकांश राज्यों में कांग्रेस की सरकार बन गयी लेकिन दक्षिण में पार्टी कमजोर होने लगी थी। 1977 के चुनाव में इंदिरा गाँधी सहित कांग्रेस के सभी नेता उत्तर भारत के सभी राज्यों में पराजित हुए और केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार बनी। मोरार जी देसाई प्रधानमंत्री हुए। इस सरकार ने धारा 356 का जबर्दस्त दुरुपयोग किया। धारा 356 के अन्तर्गत सभी 9 कांग्रेसी सरकारों (उत्तर भारतीय) को यह कहकर बर्खास्त कर दिया गया कि इन सरकारों ने भी जनता का विश्वास खो दिया है क्योंकि कांग्रेस बुरी तरह पराजित हो गयी है। मात्र तीन सालों के बाद इंदिरा गाँधी सत्ता में वापस में आ गयीं और उन्होंने भी आठ गैर कांग्रेसी सरकारों को इसी तर्क पर बर्खास्त कर दिया। नौवीं सरकार (भजन लाल के नेतृत्व में) हरियाणा में थी। वह सरकार बच गयी क्योंकि पूरी की पूरी सरकार और पार्टी कांग्रेस में शामिल हो गयी।

खैर, परिस्थितियाँ बदली और राज्यपाल का पद भी राजनीति से अछूता नहीं रहा। अन्त में 1983 में सरकारिया आयोग का गठन हुआ और उसकी रिपोर्ट भी चौंकाने वाली है। उसने कहा कि कम से कम सत्रह मामलों में धारा 356 का इस्तेमाल पूर्णतः गलत था। जनता पार्टी और कांग्रेस दोनों को ही उसने दोषी ठहराया। सरकारिया आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अक्टूबर 1984 तक 60 प्रतिशत से अधिक राज्यपाल, राज्यपाल रहते हुए राजनीति में सक्रिय रहे।[4] 1967 से 1970 तक तो राजनीतिक संस्थानो के अवमूल्यन और प्रदूषण की कहानी ही राजनीति का अभिप्राय था।

1988 से 2014 का काल केन्द्र में भी गठबंधन सरकार का काल था। राज्यों में क्षेत्रीय दल और क्षेत्रीय क्षत्रप का शासन रहा। इसका सुन्दर विश्लेषण डाउग्लास वी. बर्नी[5] तथा लॉरेन्स ने अपनी–अपनी पुस्तकों में किया है। इन दोनों की राय में हम जिस विविधता की बात करते हैं, (अलग–अलग भाषा या जाति या धर्म या क्षेत्रीय संस्कृति) सभी कमजोरी के रूप में सामने आये। रुडोल्फ और रुडोल्फ[7] मानते हैं कि भारत में परम्पराओं के साथ–साथ आधुनिकीकरण का विकास हुआ है। यह विकास कभी–कभी परिपक्व रूप में समाज को आगे बढ़ाता है तो कभी विकास में बाधा डालता है। केन्द्र राज्य संबंध में खटास के पीछे अलग–अलग प्रान्तों की बढ़ती अपेक्षाओं, उभरते राजनैतिक क्षत्रप, जातीयता, भाषावाद आदि है। इन नेताओं का विमर्श अपने राज्य तक ही आकर समाप्त हो जाता है। क्योंकि उनमें न तो राष्ट्रीय पार्टी बनने की चाहत है और न ही क्षमता। इससे संघवाद भले ही मजबूत हुआ हो लेकिन ऐसी राजनीति संकीर्ण, अल्प दृष्टि और पतनशील भी होती है। राष्ट्रीय राजनीति में पतनशीलता के उदाहरण भरे पड़े हैं। आज प्रत्येक राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों को टिकट देने से पहले निर्वाचन क्षेत्र की गणित में जातीय, धार्मिक और आर्थिक शक्ति का समीकरण देखकर ही टिकट देता है। इसीलिए रुडोल्फ और रुडोल्फ कहते हैं कि, ''राज्य, राष्ट्र एवं अर्थव्यवस्था को जन्म देता है।[8] लेकिन भारत की स्थिति अलग है। यहाँ तो नागरिक समाज और राष्ट्र को मिलकर राज्य बनाने की आवश्यकता है।

15 अगस्त 2014 को योजना आयोग के समाप्त हो जाने की जानकारी प्रधानमंत्री के लाल किले के भाषण के माध्यम से देशवासियों को मिली। इसकी जगह पर नीति आयोग को स्थापित करने का प्रस्ताव था। 7 दिसम्बर 2014 को नेशनल डेवलपमेंट कांउसिल की बैठक हुई जिसमें केन्द्रीय मंत्रियों के अलावा मुख्यमंत्रियों को भी निमन्त्रित किया गया था। इसी बैठक में नीति आयोग के गठन का मार्ग प्रशस्त कर दिया गया। 1 जनवरी 2015 से नीति आयोग अस्तित्व में आया और प्रधानमंत्री इसके पदेन अध्यक्ष होंगे। यह राष्ट्रीय सलाहकार परिषद से इस मामले में अलग होगा कि इसकी अध्यक्षा सोनिया गाँधी थीं, जो कांग्रेस की अध्यक्षा होने के साथ–साथ कांग्रेस सुप्रीमो भी थी। ऐसा माना जाता था कि प्रधनमंत्री मनमोहन सिंह उनके त्याग और उनके मनोनीत प्रधानमंत्री थे। एक सीमा तक यह सच भी था क्योंकि प्रधानमंत्री सिंह कभी राजनेता नहीं थे। वह ईमानदार नौकरशाह थे, विद्वान अर्थशास्त्री और उसके अच्छे संचालक थे लेकिन कभी आमजनों के बीच न अपनी साख नेता के रूप में बना पाये और न ही कभी नेता बनने की चाहत भी उनके मन में आयी। इसीलिए सामान्यतया राष्ट्रीय सलाहकार की अनुशंसा को अबाध गति से लागू करते रहे। संजय बारू अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि, कालक्रम में सोनिया ''परामर्श नहीं, आदेश देने लगीं।''[9]

अब यह समय के गर्भ में होगा कि क्या नीति आयोग 640 जिलों के विकास हेतु क्रमवार योजना बनायेगी जो असंभव दिखता है या जिला योजना समितियों के माध्यम से और शहरों के लिए महानगर योजना समितियों के माध्यम से और शहरों के लिए महानगर योजना समितियों के माध्यम से कार्य का संपादन करेगी।[10] वैसे संविधान के अनुच्छेद 243 (Z) में ऐसा प्रावधान है।

यहाँ ध्यान देने वाली बात है कि नीति आयोग एक परामर्श देने वाली संस्था है। इसके उपाध्यक्ष की नियुक्ति प्रधानमंत्री के द्वारा होगा तथा इसके सदस्य के रूप में कुछ महत्वपूर्ण केन्द्रीय मंत्री तथा राज्यों के मुख्यमंत्री होगें। इस आयोग की आत्मा तो यह कहती है कि प्रधानमंत्री इन लोगों की राय विचार से जो छनकर मुद्दे उभरेंगे, उसकी पृष्ठभूमि में ही केन्द्रीय मंत्रिपरिषद के कार्यों का संपादन करेंगे। प्रश्न यह उठता है कि क्या ऐसा हो पायेगा? और अगर हाँ तो फिर अंतर्राज्य परिषद और क्षेत्रीय परिषदों को समाप्त कर नीति आयोग को ही संवैधानिक दर्जा दे दिया जाय। निश्चित अंतराल में इसकी बैठक हो और कार्यप्रणाली को साफ–साफ निर्देशित कर दिया जाय। शायद यदि यह संभव हुआ तो संघवाद मजबूत हो। वैसे वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भारत के आज के अत्यधिक प्रिय और प्रभावशाली नेता है और संघवाद मजबूत हो, इसकी संभावना भी कम ही दिख रही है।

संघवाद को मजबूत करने के लिए प्रयास किये जाते रहे हैं। 2000 में वाजपेयी की सरकार ने ''संविधान समीक्षा आयोग'' का गठन किया।[11] 2007 में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की सरकार ने केन्द्र राज्य संबंधों पर न्यायमूर्ति मदन मोहन पूंछी के नेतृत्व में एक आयोग को गठित किया[12]। पुंछी आयोग ने अपनी रिपोर्ट 2010 में सौंपी। मजेदार तथ्य यह है कि इस आयोग ने जिस बात पर सबसे ज्यादा जोर दिया, वह था कि सरकारिया कमेटी की अत्यधिक सिफारिशों को लागू किया जाय। मजेदार तथ्य यह भी है कि सरकारिया आयोग की सिफारिशों को आज तक भी गंभीरता से पूरी तरह अमली जामा नहीं पहनाया गया। पुँछी आयोग की अन्य सिफारिशों में यह कहा गया कि कार्यप्रणाली राज्य एवं केन्द्र सरकार की ऐसी हो कि राज्य संघ को मजबूत करे और संघ सरकार राज्य की विविधताओं को आक्षुण्ण्य रखते हुए राज्य को मजबूत करे।

जब 2014 जून में लोक सभा में प्रधानमंत्री मोदी ने ''सहकारी संघवाद'' को मजबूत करने पर बल दिया तो आशा की एक किरण जगी, लेकिन अगस्त–सितम्बर 2014 में मनमोहन सरकार द्वारा नियुक्ति राज्यपालों को इस्तीफा देने की सलाह दी गयी और नये राज्यपालों की नियुक्ति में किसी राज्य से कोई राय–मशविरा नहीं लिया गया तो सहकारी संघवाद की अवधारणा एक बार फिर से ध्वस्त हुआ। फिर भी 14वीं वित्त आयोग की अनुशंसा और मोदी सरकार द्वारा उसे सिद्धांततः स्वीकार कर लेना, एक बार फिर से 'सहकारी संघवाद' के मजबूत करने की दिशा में आशा जागृत करता है। 14वाँ फाइनेंस कमीशन 2 जनवरी 2013 को पूर्व रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के गवर्नर श्री वाई. वी. रेड्डी के नेतृत्व में बना था। इस कमीशन की सिफारिश की समयावधि 1 अप्रैल 2015 से मार्च 2020 तक का था। अनुच्छेद 280 इस उपकमीशन को संविधान के लागू होने से प्रत्येक 2 साल पर गठित करने का आदेश देता है, जिसकी सिफारिश की अवधि 5 साल होती है। वित्त मंत्री अरुण जेटली ने बताया है कि 15वीं फाइनेन्स कमीशन के गठन की मंजूरी केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने 2015 में दे दिया।

केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा 32 से बढ़ाकर 42 फीसदी करने की अनुशंसा 14वीं फाइनेन्स कमीशन ने की। यह भाजपा के चुनाव घोषणा पत्र में भी शामिल था। 2015 के बजट में सरकार ने आश्वासन दिया कि राज्यों को जो अनुदान उनके हिस्से में जाता था उसमें वृद्धि की जायेगी तथा उनकी आमदनी में जो घाटे होंगे, उसके मूल्यांकन में केन्द्र उनकी योजना के मद में व्यय को भी ध्यान में रखा जायेगा। विशेष ग्रांट–इन–एड भी तदर्थ आधार पर दिया गया। विपक्षी दलों का आरोप है कि एक ओर राज्यों का हिस्सा 1.36 लाख करोड़ 2015 से लेकर 2016 तक बढ़ा दिया गया लेकिन दूसरी ओर केन्द्र से मिलने वाली योजनागत सहायता 3,38,000 करोड़ से घटाकर 2015 के प्रस्तावित बजट में 2,05,000 करोड़ कर दिया। कुल मिलाकर 1,33,000 करोड़ की कमी हुई। विपक्षी दलों का यह भी आरोप है कि खाद्य प्रबंधन पर शांता कुमार कमेटी की रिपोर्ट और केन्द्र द्वारा प्रयोजित योजनाओं को भी तर्कसंगत करने का प्रयास नहीं किया गया। यद्यपि सहकारी संघवाद के मूल में तर्क है कि वित्तीय मामलों में धीरे–धीरे नीतिगत रूप से केन्द्र अपने नियंत्रण को कम करे, परन्तु ऐसा होता हुआ नहीं दिखता है।

महबूबा का शपथ ग्रहण और भारतीय जनतन्त्र की बेइज्जती

भाजपा के घोषणा पत्र में साफ–साफ लिखा है कि जम्मू और कश्मीर में जो धारा 370 और 35A है, उसे समाप्त कर दिया जायेगा। यह जब होगा तब होगा लेकिन मुफ्ती महबूबा जब मुख्यमंत्री पद की शपथ ले रही थी, उस समय उसने पाकिस्तानी सरकार और आतंकवादियों को शांतिपूर्ण चुनाव के लिए धन्यवाद दिया। चुनाव आयोग और सुरक्षा बलों की चर्चा तक नहीं की। विडम्बना यह कि उस शपथ ग्रहण में प्रधानमंत्री भी उपस्थिति थे। निश्चितरूपेण महबूबा न तो जम्मू–कश्मीर की शांतिप्रिय जनता का प्रतिनिधित्व कर रहीं हैं और न ही भारतीय जनतांत्रिक व्यवस्था की इज्जत। तत्काल धारा 356 का प्रयोग कर वहाँ की सरकार को भंग कर देना चाहिए। इससे संघवाद का हनन नहीं होता है। वस्तुतः यही सब तो कारण है कि केन्द्र को मजबूत बनाया गया है।

उपसंहार के तौर पर कहा जा सकता है कि स्थानीय शासन की मजबूती, एक पार्टी के वर्चस्व का समाप्त होना, केन्द्र में गठबंधन सरकारों का लगातार गठन, न्यायपालिका का प्रान्तों को और अधिक स्वायत्तता देने सम्बन्धी निर्णय, आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव आदि ने संघवाद को मजबूत किया है। यह

यों ही नहीं है कि किसी भी राज्य का मुख्यमंत्री निवेश के आमंत्रण को लेकर विदेशी दौरे पर चले जाते हैं, जबकि विदेश सम्बन्ध पूर्णरूपेण केन्द्र का अधिकार है। निश्चित ही मुख्यमंत्रियों का यह कदम केन्द्र की सहमति से है। लेकिन अलग–अलग क्षेत्रीय दलों का वर्चस्व, राज्य सभा में उनकी बढ़ती संख्या और केन्द्र–राज्य में टकराव भारतीय विकास को तो नहीं रोक पायेगा, लेकिन विकास दिशाहीन होगा। क्षेत्रीय दलों को भी अहंकार का परित्याग करना चाहिए।

दूसरी ओर 2014 के लोकसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को बहुमत मिला है। शक नहीं कि मोदी की लोकप्रियता काफी बढ़ी है लेकिन यह भी नजरअंदाज करना ठीक नहीं होगा कि उस विजय में कई पार्टी के मतदाता एक साथ हैं। चुनावपूर्ण राजनीतिक तालमेल भी एक महत्वपूर्ण कारक है इस सफलता का कई राज्यों में भी भाजपा या भाजपा नीत सरकार है। अगर ऐसा कोई परिदृश्य आ जाये जहाँ भाजपा कांग्रेस की तरह पुनः दशकों तक वर्चस्व वाली पार्टी अकेले अपने बलबूते पर बन जाये तो पुनः संविधान एकात्मक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो जायेगा।

संदर्भ–सूची

1- ग्रेनविल ऑस्टिन, द इंडियन कॉस्टीट्यूशन : कॉर्नर स्टोन ऑफ ए नेशन; ऑक्सफोर्ड, क्लेरेण्डन प्रेस, 1966 पृ. 186

2- ए.एच. बिर्च, फेडरल्जि्म, फाइनांस एण्ड सोशल लेजिस्लेशन इन कनाडा आस्ट्रेलिया एण्ड युनाइटेड स्टेट्स, ऑक्सफोर्ड, क्लेरेण्डन प्रेस, 1955, पृ. 186

3- एल.एन. शर्मा, दी इंडियन प्राइम मिनिस्टर : ऑफिस एण्ड पावर्स, नयी दिल्ली, मैकमिलन ऑफ इंडिया, 1976, पृ. 78

4- केन्द्र–राज्य संबंध रिपोर्ट, भाग 1, 1988, पृ. 23

5- डाउग्लास बर्नी, इंडिया फ्राम कुजाई–फेडरलिज्म टू कुजाई कन्फेडरेशन : द ट्रांसफोरमेशन ऑफ इंडिया 'द पार्टी सिस्टम' द जर्नर ऑफ फेडरलिज्म, पब्लिसर्स, वोल. 33 नं. 4, 2003, पृ. 153–171

6- लॉरेन्स सेज, फेडरलिज्म विदाउट ए सेन्टर : द इम्पैक्ट ऑफ पॉलिटिकल एण्ड इकॉनामिक रिफार्म आन फेडरल सिस्टम, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2002

7- रुडोल्फ एण्ड रुडोल्फ, द मॉडर्निटी ऑफ ट्रेडीशन : पॉलिटिकल डेवलपमेंट इन इंडिया, शिकागो, युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1984

8- रुडोल्फ एण्ड रुडोल्फ, इन परस्यूट ऑफ लक्ष्मी : द पॉलिटिकल इकॉनमी ऑफ द इंडियन स्टेट, शिकागो, युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1987

9- संजय बारू, द एक्सीडेंटल प्राइम मिनिस्टर, पैग्यून, माई किंग, 2014, पृ. 74

10- अनुज कुमार अग्रवाल, ''संघ व राज्य के आर्थिक संबंधों की पुनर्व्याख्या'', योजना, नई दिल्ली, फरवरी 2015, पृ. 49–50

11- संविधान में संशोधन पर सुझाव देने हेतु जस्टिस बेंकेट चलैया की अध्यक्षता में 'द नेशनल कमीशन टू रिव्यू द वर्किंग ऑफ द कॉन्स्टीटूयूशन'' नामक आयोग ने अपनी रिपोर्ट 2002 में सरकार को सौंपा।

12- 28 अप्रैल 2007 में जस्टिस पुँछी की अध्यक्षता में केन्द्र–राज्य संबंध पर अपनी सिफारिश देने के लिए एक आयोग की स्थापना की। पूर्व गृह सचिव धीरेन्द्र सिंह,

बी.के. दुग्गल, एन.आर. माधव मेनन इसके सदस्य थे। बाद में अमरेश बागची को भी इसका सदस्य बनाया गया। 20 अप्रैल 2010 में आयोग ने अपनी रिपोर्ट सरकार को दी।

Copyright © 2015, Dr. Basuki Nath Chaudhry. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.